Baahubali Aur Neminath
सामाज विकासमाला
बाहुबली और नेमिनाथ
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

समाज-विकास-माला : १९

बाहुबली और नेमिनाथ

त्याग और तप की दो शिक्षाप्रद कहानियां

लेखक
माईदयाल जैन
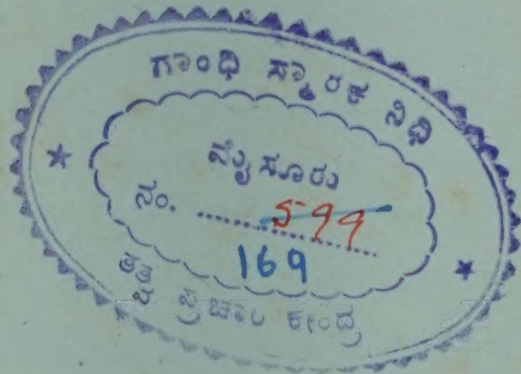
संपादक
यशपाल जैन

१९५८

सस्ता साहित्य मण्डल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

तीसरी बार : १९५८
मूल्य
सैंतीस नये पैसे

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वह काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा। बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

इस पुस्तक-माला को हमने इन्हीं बातों को सामने रखकर चालू किया है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रखा गया है। हर किताब में चित्र भी दने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय और छपाई में पाठकों को सुधार की गुंजाइश मालूम हो तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

तीसरा संस्करण

बड़े हर्ष की बात है कि इस पुस्तक का तीसरा संस्करण इतनी जल्दी प्रकाशित हो रहा है। इस माला की सभी पुस्तकें पाठकों को पसंद आ रही हैं, इससे हमें बड़ा आनंद होता है। हमें विश्वास है कि इन सामयिक और उपयोगी पुस्तकों को पाठक चाव से पढ़ेंगे और इनके प्रचार में हाथ बटायेंगे।

—मंत्री

पाठकों से

हमारे देश में बहुत-से राजा-महाराजा हुए हैं; लेकिन उनमें ऐसे कम ही मिलेंगे, जिन्होंने अपना राजपाट छोड़कर त्याग और तपस्या का जीवन बिताया हो। बाहुबली उन्हींमें से एक थे। वह राजा थे; लेकिन ऐसा मौका आया कि उन्हें अपने बड़े भाई से लड़ना पड़ा। इसका उनके मन पर बुरा असर पड़ा और वह राजपाट और घरबार सब छोड़कर तपस्या करने बन में चले गये। इसी तरह नेमिनाथ का जीवन भी जरा-सी देर में बदल गया और वह सबकुछ त्यागकर गिरनार पहाड़ पर चले गये और तपस्या करके तीर्थंकर बने।

इन कहानियों से हमें शिक्षा मिलती है कि आदमी दुनिया की बड़ी चीजों को इकट्ठा करके बड़ा नहीं बनता, त्याग से और आत्मा को ऊंचा उठाने से बड़ा बनता है।

इन कहानियों को जो भी पढ़ेगा, उसे लाभ ही होगा।

—संपादक

बाहुबली और नेमिनाथ

१—बाहुबली

: १ :

पुराने समय में हमारे देश में बाहुबली नाम के एक महापुरुष हुए हैं। उनकी वीरता और त्याग की कहानी बड़ी ही रोचक है। वह पोदनपुर के राजा थे। पोदनपुर का राज्य अयोध्या के पास था। इनके पिता का नाम ऋषभनाथ था और यह इक्ष्वाकु-वंश के थे।

महाराजा ऋषभनाथ अयोध्या में राज्य करते थे। वह बहुत भले थे और उनके राज में प्रजा बड़ी सुखी थी।

उनके यशस्वती और सुनंदा नाम की दो रानियां थी। यशस्वती महारानी थी। उसके कई लड़के-लड़कियां थीं, जिनमें भरत सबसे बड़ा था। सुनंदा छोटी रानी थी और उसके दो संतानें थीं——बाहुबली और उसकी बहन। महाराजा के सभी बेटे-बेटियां योग्य और गुण-वान थे। बड़े होने पर उन्होंने भरत को युवराज बनाया और दूसरे राजकुमारों को बड़ी-बड़ी जागीरें दीं। बाहुबली पोदनपुर के राजा हुए।

एक दिन अचानक ऋषभनाथ महाराज के राज-दरबार में नीलांजना नाम की अप्सरा का नाचते-गाते लोप हो गया। इससे महाराजा का मन संसार और राजपाट से फिर गया। वह अपने बेटों को राज्य-काज सौंपकर साधु बन गये और बन में चले गये। घोर तप करने से उन्हें ज्ञान हो गया और उन्होंने लोगों को अहिंसा, दया और सत्य आदि का उपदेश दिया। इन्हीं ऋषभनाथ ने जैन-धर्म की नींव डाली। इन्हें आदिनाथ भी कहते हैं।

ऋषभनाथ के साधु बन जाने के बाद उनके लड़कों ने उनके काम को संभाला। बाहुबली बड़े ऊंचे शरीर-वाले, धीर और वीर पुरुष थे। इनकी भुजाएं लंबी और बलवान थीं। उन्हें देखकर उनका नाम ठीक ही लगता था। वह अपने बड़े भाई भरत से उम्र में छोटे थे, पर बल, गुण और चतुराई में उनसे कहीं बढ़-चढ़-कर थे। विनय, नम्रता और बड़ों का आदर करना, ये उनके खास गुण थे। अत्याचार और अन्याय के सामने वह नहीं झुकते थे।

: २ :

राज्यसिंहासन पर बैठने के कुछ समय बाद भरत के मन में चक्रवर्त्ती बनने की इच्छा पैदा हुई, पर उसके लिए

आसपास के सभी राजाओं को जीत लेना जरूरी था। वह सेना लेकर अपने राज्य से चला। जहां जाता वहीं उसे विजय मिलती। उत्तर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम सभी दिशाओं के राजा उसके अधीन हो गये। उसने सारे देश में अपना राज्य फैला लिया।

अपनी इस जीत से चक्रवर्ती भरत अभिमान से फूल उठा। संसार में अपनेको सबसे पहला चक्रवर्ती राजा समझकर उसने एक पर्वत पर अपने नाम का एक लेख खुदवाने की बात सोची। लेकिन वहां उसे इतने चक्रवर्ती राजाओं के नाम पहले ही से खुदे मिले कि अपना नाम खुदवाने के लिए उसे स्थान ही न मिला। तब उसने एक-दो नामों को मिटवाकर अपना नाम खुदवाया।

सबको जीतने के बाद जब भरत अयोध्या को लौटा तो शहर के द्वार पर आकर उसका चक्र रुक गया। महाराजा को बड़ा आश्चर्य और चिंता हुई। विद्वानों और मंत्रियों ने बताया कि अभी कुछ राजा बिना जीते रह गये हैं। वे राजा बाहर के नहीं, उसके अपने ही भाई हैं। उनको जीते बिना वह चक्रवर्ती नहीं हो सकता था।

भरत ने तत्काल अपने भाइयों को जीतने की तैयारी करने की आज्ञा दी। मंत्रियों ने उसे समझाया

कि क्रोध छोड़कर शांति और नीति से काम लीजिए, लेकिन भरत न माना।

उसने संदेश देकर राजदूतों को बाहुबली को छोड़ शेष सब भाइयों के पास भेजा। महाराजा का संदेश सुनकर वे सब बड़े असमंजस में पड़ गये। उनके सामने मान, अपमान और यश-अपयश की बात तो थी ही, लेकिन उससे भी बढ़कर भाई-भाई के संबंध का सवाल था। इसलिए सब एक जगह पर सलाह करने के लिए इकट्ठे हुए। बड़े सोच-विचार के बाद उन्होंने तय किया कि अपने पिता ऋषभनाथ से सलाह की जाय। वे उनके पास गये। दुनिया से विरक्त ऋषभनाथ भला इन बेटों को राज और जागीर-जैसी छोटी-सी चीज के लिए आपस में लड़ने की सलाह कैसे देते ? उन्होंने कहा––"इस दुनिया में क्या रखा है। असली चीज़ तो प्रेम है।" उनके उपदेश को सुनकर सभी भाइयों ने अपनी-अपनी जागीरें छोड़ दीं और भरत की अधीनता स्वीकार न करके साधु बन गये।

बाहुबली रह गया।

: ३ :

बाहुबली को भरत के इनसब कामों की सूचना हर समय अपने गुप्तचरों से मिलती रहती थी।

अचानक एक दिन भरत का राजदूत बाहुबली के दरबार में आया। उसे देखकर बाहुबली का माथा ठनका। फिर भी उसने भरत की कुशलता मालूम की और आने का कारण पूछा। राजदूत ने कहा, "महाराज, आपके बड़े भाई भरत चक्रवर्ती होगये हैं। सभी राजाओं ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली है। इतने बड़े राज्य को संभालने के लिए हमारे महाराजा आपका सहयोग चाहते हैं। आप उनसे मिलने का कष्ट करें।"

बाहुबली ने मुस्कराते हुए कहा, "हमें अपने बड़े भाई भरत के चक्रवर्ती बनने का समाचार सुनकर बड़ी खुशी हुई। पर जैसा सहयोग वह चाहते हैं, हम नहीं दे सकेंगे। एक हाथ में तलवार लेकर दूसरे हाथ से हमारा साथ नहीं मांगा जा सकता। आप जाकर अपने राजा को हमारी बात समझा दें।"

राजदूत ने बाहुबली को सब तरह से समझाया, पर वह न माना। जब नाममात्र की अधीनता मानने से भी बाहुबली ने इन्कार कर दिया तब राजदूत ने लाचार होकर भरत का युद्ध का संदेश उसे सुनाया। इसपर बाहुबली ने तनकर कहा, "युद्ध! युद्ध की यह धमकी! जाओ, कह दो कि हम युद्ध से नहीं डरते। पर वह जरा सोच-समझकर युद्ध करें। उसकी सारी जिम्मेदारी

उन्हींपर होगी।

राजदूत लौट आया और उसने भरतको सब बातें

बाहुबली बोला, "जाओ, कह दो कि हम युद्ध से नहीं डरते।"

सुना दीं। सुनते ही वह क्रोध से लाल हो गया। मंत्री चिंता में पड़ गये। भरत ने मंत्रियों से कहा कि बिना लड़ाई लड़े बाहुबली नहीं मानेगा। इसलिए लड़ाई की

तैयारी करो ।" मंत्रियों ने प्रार्थना की कि एक बार फिर कोशिश की जाय ।

भरत और बाहुबली के मंत्री पोदनपुर में मिले। प्रजा और दोनों भाइयों की भलाई को सामने रखकर चर्चा हुई, पर बाहुबली किसी तरह भी भरत की अधीनता मानने को राजी न हुए । तब मंत्री बिना किसीका खून बहाये मामले को निबटाने की बात सोचने लगे । बहुत सोच-विचार के बाद दोनों भाइयों में दृष्टि-युद्ध, जल-युद्ध और मल्लयुद्ध करके हारजीत का फैसला करने की बात तय हुई ।

मंत्रियों के धर्म-युद्ध के इस फैसले को सुनकर भरत बड़े प्रसन्न हुए । समय और स्थान तय करके उसकी सूचना बाहुबली को दे दी गई । भरत-बाहुबली में होने-वाले इस निराले युद्ध की खबर देश के कोने-कोने में बिजली की तरह फैल गई । छोटे-से राज्य के लिए होनेवाले इस युद्ध से सभीको बड़ा दुःख था ।

नियत दिन आगया । एक बड़े मैदान में युद्ध की तैयारी की गई । इधर-उधर दर्शकों की भीड़ थी । बीच में फैसला करनेवाले और दोनों तरफ़ के बड़े-बड़े मंत्री खड़े थे । दोनों भाई अखाड़े में उतर आये। दोनों के गठे हुए सुडौल बलवान् शरीर, सुंदरता और

तेज को देखकर सभी वाह-वाह करने लगे। जोड़ बराबर का था। कोई नहीं कह सकता था कि किसकी जीत होगी।

दोनों भाइयों ने एक-दूसरे को गहरी निगाह से देखा और जांचा। पहले दोनों का दृष्टि-युद्ध शुरू हुआ। बहुत देर तक दोनों आंखों से लड़ते रहे, पर किसीकी भी आंखें न झपकीं। बाहुबली कद में भरत से लंबे थे। इसलिए बाहुबली की आंखों से आंखें मिलाने के लिए भरत को अपनी गर्दन पीछे को झुकानी और आंखें ऊपर को उठानी पड़ती थीं। नतीजा यह हुआ कि भरत की गर्दन दुखने लगी और उनकी आंखें झपक गईं। दृष्टि-युद्ध में बाहुबली की जीत और भरत की हार हुई। बाहुबली के साथियों ने उनका जयकार किया।

इसके बाद दोनों भाई जलयुद्ध के लिए तालाब में कूद पड़े। उन्होंने एक-दूसरे पर खूब जल फेंका और दोनों तैरने लगे। इसमें भी जीत बाहुबली की ही हुई।

अब दोनों में मल्ल-युद्ध शुरू हुआ। दोनों ने कुश्ती का बचपन से अभ्यास किया था। जवानी में भी दोनों में कई बार कुश्तियां हुई थीं, पर इस कुश्ती पर दोनों के भाग्य का फैसला था। भाई-भाई ने आपस में हाथ मिलाये और तालें ठोकीं, खूब पैंतरे बदले और अपना-

अपना दावपेंच चलाया। कभी बाहुबली भरत पर झपटता तो कभी भरत बाहुबली की टांगों के बीच में

भरत और बाहुबली का मल्ल-युद्ध

घुसकर उसे पछाड़ने का प्रयत्न करता। लड़ते-लड़ते दोनों थककर चूर हो गये, पर कोई भी चित न हुआ। आखिर बाहुबली ने ऐसा पेंच चलाया कि भरत को अपनी दोनों भुजाओं में अपने सिर के ऊपर उठा लिया। अब बाहुबली के लिए भरत को धरती पर चित

पटककर उसकी छाती पर सवार होकर बैठ जाना आसान था। बाहुबली ने अपने बड़े भाई भरत के मान का ध्यान रखा और उसे अपने कंधों पर बिठा लिया।

भरत के मंत्री और सरदार लज्जित हो उठे। भरत हार के अपमान से नीति-अनीति को भूल गया। उसने धोखे से अपने चक्र को बाहुबली पर चला दिया, पर वह चक्र बाहुबली का कुछ न बिगाड़ सका। इसपर सभीने भरत की निंदा और बाहुबली की बड़ाई की।

धर्म-युद्ध की शर्तों के अनुसार बाहुबली अब भरत का सारा राज्य ले सकता था, पर इस सारी घटना से उसके मन में बड़ी उथल-पुथल मच गई। उसने सोचा और कुछ ही देर में उसका मन संसार से हट गया। हृदय ने ऐसा पलटा खाया कि वह संसार का एक बेजोड़ महापुरुष बन गया। उसने भरत को संबोधन करते हुए कहा, "सारे देश को जीतकर भी तुम्हें संतोष नहीं हुआ। अपने भाइयों का अधिकार छीनते हुए और मुझपर धोखे से चक्र चलाने में तुम्हें लज्जा नहीं आई। क्या यही तुम्हारी धर्मनीति और राजनीति है? क्या भरत को यह सब शोभा देता है? यह राज्य न किसीका रहा है, न तुम्हारा रहेगा। अब तुम्हीं इस राज्यलक्ष्मी

को भोगो। मैं उस सबको छोड़ता हूं।"

भरत मन-ही-मन लज्जित हुआ। उसने बाहुबली को बहुत समझाया, पर वह अपने इरादे से न टला।

: ४ :

युद्ध-भूमि में बाहुबली के मन में जो विराग पैदा हुआ था, वह पक्का होगया। राज्य और घर छोड़ने का उसका विचार मजबूत हो गया। उसने सोचा कि

बाहुबली राजपाट छोड़कर वन को जा रहे हैं

आत्मा का काम संसार में बार-बार जन्म लेना और

मरना नहीं है। आत्मा को इससे छुटकारा पाना चाहिए। मनुष्य-शरीर पाना कठिन है। उसको संसार के सुख-भोगों में गंवा देना समझदारी की बात नहीं है। यह सब सोचकर उन्होंने अपने बेटे महाबली को अपना राज्य सौंप दिया और स्वयं घर-बार छोड़कर अपने पिता ऋषभनाथ के बताये रास्ते पर चल पड़े। उनके साथ बहुत-से दूसरे लोग भी साधु बन गये।

बन में जाकर बाहुबली ने तप किया। उनकी एक ही धुन थी, इस नाशवान शरीर का मोह छोड़कर अपनी आत्मा को परमात्मा बनाया जाय। वह ज्ञानवान और बलवान तो थे ही, इसीलिए उन्होंने अपने लिए कठोर-से-कठोर तप और व्रत चुने। शुरू में एक वर्ष तक बिना हिले-डुले खड़े होकर तप करने का व्रत लिया। कितना कठोर था वह !

एक ही स्थान पर बिना कुछ खाये-पिये वह मूर्ति की तरह सीधे खड़े रहे। उनकी आत्मा ध्यान में लीन थी। बाहर की न उन्हें खबर थी न चिंता। उनके शरीर को अनेक कष्ट हुए, पर उन्होंने तनिक भी परवा न की। भूख-प्यास, गर्मी-सरदी और वर्षा आदि के कष्टों को उन्होंने कष्ट नहीं समझा। संसार की सब वस्तुओं को उन्होंने पहले ही त्याग दिया था। अब उनके मन में

भी कोई मोह या इच्छा न रही। सोने का मैल आग में तपकर कटता है, ऐसे ही तपस्वी के कर्मों का मैल तप से दूर होता है। मुनिराज बाहुबली एक वर्ष के घोर तप से अपनी आत्मा शुद्ध कर रहे थे। इस लंबे तप में उनके शरीर के आसपास कहीं घास पैदा हो गई, तो कहीं बेलें उनकी देह पर चढ़ गईं। सांपों ने भी घुटनों से ऊपर तक मिट्टी की बांबी बना ली, पर बाहुबली को न उनका पता था न डर। उनका शरीर तप के कारण इतना पवित्र और निर्मल बन गया कि सांप भी उन्हें न काटते थे, उनसे खेलते थे। मन, वचन और तन से वह अहिंसा का पालन कर रहे थे। उनका जीवन उस वन के लिए एक चमत्कार बन गया। वहां सब तरफ़ शांति-ही-शांति होगई। सभी जीव-जंतु आपस के वैर को भूल गये और प्रेम से रहने लगे। घोर तप से बाहुबली का शरीर सूख गया, पर उनका तेज बढ़ गया।

इतना होते हुए भी बाहुबली के तप में एक कमी थी। उनके मन में एक मामूली-सा विचार कांटा बनकर उनके हृदय में चुभ रहा था। वह कभी-कभी सोचने लगते थे कि मेरे कारण मेरे बड़े भाई भरत को कष्ट पहुंचा। उनकी यह वेदना चल रही थी कि साल

भर का तप पूरा होने पर एक दिन चक्रवर्ती भरत मुनि-राज बाहुबली के दर्शन करने आये। बड़ी भक्ति और विनय से उनकी पूजा की, नमस्कार किया और उनकी परिक्रमा की। इसी समय बाहुबली के हृदय की वह टीस दूर हो गई। उन्हें पूर्ण ज्ञान हो गया।

इसके बाद बाहुबली कैलास पर्वत पर तप करने चले गये। वहीं से वह मोक्ष गये।

: ५ :

भरत ने उनकी याद में पोदनपुर में एक बहुत बड़ी, सुंदर और मूल्यवान मूर्ति बनवाई। स्त्री-पुरुष भक्ति से उनके दर्शन करते और बाहुबली के जीवन से शिक्षा लेते। पर समय के प्रभाव से वह मूर्ति प्राचीन काल में ही गायब हो गई। आज बाहुबली की बहुत ही विशाल प्रतिमा दक्षिण के श्रवणबेलगोल नामक स्थान में है। इस-के दर्शन के लिए देश के कोने-कोने से लोग आते हैं। मैसूर राज्य में विंध्यगिरि नामक पर्वत पर श्रवणबेलगोल की बस्ती है। उसी पर्वत में से काटकर ५७ फुट ऊंची यह विशाल मूर्ति बनाई गई है। लगभग एक हजार वर्ष पहले गंगवंश के राजा राचमल्ल के प्रसिद्ध मंत्री और सेनापति चामुण्डराय ने अपनी माता के दर्शनों के लिए यह मूर्ति बनवाई थी। चौदह-पंद्रह मील से यह

विशाल मूर्ति दिखाई देती है। यह उस अवस्था की है, जबकि बाहुबली खड़े होकर तपस्या कर रहे थे और बेलें उनके शरीर पर चढ़ गई थीं। शांति और अचल तप का भाव मूर्ति के अंग-अंग से प्रकट होता है। मूर्त्ति बनानेवाले कारीगर ने इसके बनाने में अपनी कारीगरी और चतुराई का कमाल कर दिखाया है। एक हजार वर्ष बीत जाने पर

बाहुबली की विशाल मूर्ति

भी धूप, हवा और वर्षा से इस मूर्ति में कोई अंतर नहीं पड़ा है। आज भी वह नई मालूम होती है।

●

२—नेमिनाथ

: १ :

बहुत दिनों की बात है। द्वारका में यदुवंश का राज था। इस वंश को हरिवंश भी कहते थे। भगवान कृष्ण इसी वंश के थे। इस वंश में और भी कई महापुरुष पैदा हुए। नेमिनाथ उनमें से एक थे। वह श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे और उम्र में उनसे छोटे थे। उनके पिता का नाम समुद्रविजय और माता का शिवादेवी था। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव समुद्रविजय के छोटे भाई थे। समुद्रविजय में कई गुण थे। वह बड़े गंभीर थे, दानी थे और प्रजा की बड़ी अच्छी तरह देखभाल करते थे। नेमिनाथ की माता भी बड़ी गुणवती और धर्मात्मा थीं।

राजकुमार नेमिनाथ बहुत सुंदर थे। दया तो उनमें कूट-कूटकर भरी थी। धर्म की ओर उनका झुकाव अधिक था। दूसरे राजकुमारों की तरह उनका भी अच्छे ढंग से पालन-पोषण हुआ। विद्याएं सिखाई गईं। राजनीति और लड़ाई की कला में वह बहुत होशियार हो गये। उनका शरीर बड़ा बलवान था और वह बड़े हिम्मतवाले थे। बचपन की एक घटना है। एक दिन वह राज्य के हथियार-घर में चले गये। वहां वह नागशैया पर चढ़ गये और

उन्होंने शारंग नाम का धनुष चढ़ा लिया। यह धनुष ऐसा था कि उसे केवल श्रीकृष्ण चढ़ा सकते थे। इतना ही नहीं, उन्होंने राजशंख को उठाकर बजाना शुरू कर दिया ये काम आसान न थे। बड़े-से-बड़ा लड़ाका भी नहीं कर सकता था। शंख की आवाज इतने जोर से हुई कि सारे शहर में खलबली मच गई। किसी बड़ी मुसीबत के आने पर ही इस शंख को बजाया जाता था। शहर के नरनारी डर से कांपने लगे। जब उन्हें मालूम हुआ कि यह राजकुमार नेमिनाथ की करतूत है तब चैन पड़ा। श्रीकृष्ण ने उन्हें पास बुलाकर प्रेम से उनकी पीठ थपथपाई।

जब नेमिनाथ बड़े हुए तो उनके विवाह की बात चली। उनके माता-पिता के पास चारों तरफ से संदेश आने लगे। उनके लिए गुण, रूप और चतुराई में सब तरह से योग्य राजकुमारी मिलना आसान न था, पर अंत में उन्हें एक ऐसी ही कुमारी मिल गई। उसका नाम राजमती था। उसके पिता का नाम उग्रसेन था। वह जूनागढ़ के राजा थे। जूनागढ़ भारत के पश्चिम में एक पुरानी और प्रसिद्ध रियासत थी। माता-पिता प्यार से राजमती को 'राजुल' कहते थे।

राजुल फूलों के समान कोमल, चंद्रमा की तरह शीतल स्वभाववाली, सुंदर और महान गुणवती

राजकुमारी थी। अपने इन गुणों के कारण वह दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। द्वारका और जूनागढ़ दोनों ही राज्यों में इस संबंध से प्रसन्नता हुई।

विवाह का दिन पास आने लगा। दोनों तरफ से जोरों की तैयारी होने लगी। द्वारका में राजा समुद्रविजय और श्रीकृष्ण की देखरेख में सब तैयारियां हो रही थीं। उधर जूनागढ़ में राजा उग्रसेन बरात के स्वागत और उसके ठहरने व भोजन आदि की व्यवस्था करा रहे थे। वहां के सब मर्द-औरतें काम में हाथ बंटा रहे थे। वे चाहते थे कि प्रबंध में कोई कमी न रहने पावे। जूनागढ़ की गली-गली को सजाया गया। जगह-जगह द्वार लगाये गये, बंदनवारें बांधी गईं। विवाह के लिए एक सुंदर मंडप तैयार किया गया। मंडप को चंवरों, छत्रों, मोतियों की झालरों, फूलमालाओं और रंग-बिरंगे कीमती रेशमी वस्त्रों से सजाया गया। सोने-चांदी के पत्रों से जड़े हुए खंभे मंडप की शोभा को दुगना कर रहे थे। मंडप के ठीक बीच में विवाह के लिए एक लंबी-चौड़ी सुंदर वेदी बनाई गई। उसके चारों तरफ हजारों आदमियों के बैठने का प्रबंध किया गया। भोजनशाला में तरह-तरह की मिठाइयां, नमकीन और साग-भाजियां तैयार हो रही थीं। हरएक बराती की रुचि का ध्यान रखा

गया था। बाजे बज रहे थे। मंगल-गीत गाये जा रहे थे। सब तरफ से वर-वधू के लिए आशीर्वाद और शुभ-कामनाएं आ रहीं थीं।

विवाह का दिन आया। बरात बड़ी सजधज के साथ द्वारका से जूनागढ़ आ पहुंची। इस बरात की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है ? यह यदुवंश के राजकुमार की बरात थी। उसकी तैयारी में राजा समुद्रविजय और श्रीकृष्ण ने कोई कसर न छोड़ी थी। बरात में सजे हुए रथ, हाथी, घोड़े और सांडनियां थीं। बरात की भीड़ का अंदाज न था। हरएक बराती कीमती पोशाक और गहने पहने हुए था। बरात के आगे बाजे बज रहे थे। बाजों के पीछे और बरातियों के आगे नेमिनाथ बड़ी शान से राजसवारी पर चंवरों और छत्रों के बीच आ रहे थे। राजा उग्रसेन, उनके कुटुंबी-जन और राजदरबारी सब मिलकर राजा समुद्रविजय और बरात का बड़े उछाह से स्वागत कर रहे थे।

बरात धीरे-धीरे विवाह-मंडप की ओर जा रही थी। अचानक एक ऐसी घटना घटी, जिसने सारा रंग ही पलट दिया, नेमिनाथ और राजुल के जीवन को नई दिशा में मोड़ दिया।

बरात जब भोजनशाला के पास से गुजर रही थी,

एक तरफ से बहुत-से पशुओं के चिल्लाने और बिल-बिलाने की आवाज नेमिनाथ के कानों में पड़ी। उन्होंने सारथी से पूछा, "यह क्या है ?"

पशुओं का चीखना सुनकर नेमिनाथ ने पूछा, "यह क्या है ?"

सारथी ने उत्तर दिया, "आपके विवाह में दावत के लिए ये पशु इकट्ठे किये गये हैं।"

राजकुमार की समझ में कुछ नहीं आया। उन्होंने फिर पूछा, "तुम्हारा मतलब ?"

सारथी ने समझाया, "आपके विवाह में मांस खाने वाले लोगों के लिए पशुओं को मारकर इनका मांस-पकाया जायगा। अपनी मौत को सामने देखकर ही ये

पशु चिल्ला रहे हैं।

सारथी की यह बात सुनकर नेमिनाथ के हृदय को गहरी चोट लगी। कहां उनकी दया-भावना और कहां यह निर्दय काम ! तरह-तरह के विचार उनके मन में उठने लगे। फिर उन्होंने सारथी को पशुओं के बाड़े की ओर चलने को कहा। वहां जाकर उन्होंने सबसे पहले उन पशुओं को छोड़ देने की आज्ञा दी। सब पशु छोड़ दिये गये।

बरात में खलबली मच गई। राजा समुद्रविजय और उग्रसेन ने यह बात सुनी तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ; पर उन्होंने समझा कि बात यहीं समाप्त हो जायगी। लेकिन भगवान को तो कुछ और ही मंजूर था। राजकुमार का हृदय वैराग-भावना से भर गया। उन्होंने विवाह न करने और संसार छोड़ साधु के व्रत लेकर तप करने का निश्चय किया। विवाह की पोशाक, आभूषण, मुकुट और कंगन आदि सब उन्होंने उतार दिये और रथ से उतरकर जंगल की ओर चलने को तैयार हो गये। इतने में उनके पिता, कृष्ण, दूसरे कुटुंबी और राजा उग्रसेन वहां आ पहुंचे। एक-एक करके सबने उन्हें समझाया। कहा कि जिन पशुओं के दुःख के कारण आपके हृदय को चोट लगी है, उन्हें छोड़ दिया गया है। यह भी कहा गया कि आपके इस तरह चले जाने से दोनों

कुटुंबों के स्त्री-पुरुषों को, माता-पिता को और राजकुमारी राजमती को बड़ा दुःख होगा। अंत में उन्हें समझाया गया कि त्याग और तप का जीवन बड़ा कठिन है; पर उन्होंने एक न सुनी। अपने इरादे पर अटल रहे। अब वह साधु बनकर तप के लिए जूनागढ़ के पास ही गिरनार पर्वत की ओर चल पड़े। उनके शरीर पर अब कोई भी कपड़े और आभूषण न थे। संसार के पानी के बबूले-जैसे सुखों को लात मारकर वह मोक्ष के हमेशा रहनेवाले सुखों को खोजने जा रहे थे।

लोग समझाकर हार गये तो लाचार होकर उन्होंने होनी को बलवान समझकर अपने मन को तसल्ली दी।

: २ :

राजकुमारी ने ये सब बातें सुनीं तो उसे बड़ा दुःख हुआ। वह फूट-फूटकर रोने लगी। विवाह के सब वस्त्र-आभूषण उसने उतार फैंके। अपने सिर को धुनने लगी और बाल नोचने लगी। कुछ समय बाद वह मूच्छित होकर धरती पर गिर पड़ी। उसके माता-पिता और कुटुंबीजन पहले ही दुखी थे। बेटी के इस रुदन को कैसे सहन कर सकते थे! उन्होंने राजुल को तरह-तरह से समझाना शुरू किया। कहा कि अभी

बिगड़ा ही क्या है ? तुम इस बात को भूल जाओ। मां-बाप ने यहांतक कहा कि तुम्हारे लिए शीघ्र ही नेमिनाथ से भी अच्छा वर ढूंढ़ देंगे। पर माता-पिता की यह दलील राजमती के हृदय पर तीर के समान लगी। उसने व्याकुल होकर कांपती हुई आवाज में लज्जा के साथ कहा, "आप यह क्या कहते हैं ? मैं मन में जिसे एक बार पति मान चुकी हूं उसे छोड़कर किसी दूसरे को कैसे स्वीकार कर सकती हूं ? मैं विवाह करूंगी तो नेमिनाथ से नहीं तो मैं भी उनके ही रास्ते पर जाऊंगी।"

माता-पिता ने उसे फिर ऊंच-नीच समझाई, दुनियादारी की बातें बताईं; पर राजमती कब मानने वाली थी। उसने उनसे कहा कि आप मुझे आज्ञा दीजिये। मैं वन में जाकर स्वयं उन्हें समझाने की कोशिश करूंगी।

माता-पिता ने लाचार होकर उसे आज्ञा दे दी। अपनी कुछ सखियों के साथ राजमती गिरनार पर्वत की ओर चल पड़ी।

उसके मन में तूफान उठ रहा था।

: ३ :

गिरनार पर्वत के पास पहुंचकर राजमती ने अपने रथ और सखियों को छोड़ दिया और अकेली उस स्थान

पर पहुंची, जहां नेमिनाथ एक शिला पर तप कर रहे थे। कुछ ही दिन के तप, व्रत और उपवास से उनका शरीर कुम्हला गया था। पर उनके चेहरे पर एक तपस्वी का-सा तेज था।

राजमती उनका तेज देखते ही समझ गई कि उसका काम कितना कठिन है; फिर भी वह धीरज और हिम्मत के साथ आगे बढ़ी। वह सोच रही थी कि पास जाकर यह कहेगी, वह कहेगी; पर ज्योंही वह उनके सामने पहुंची, सबकुछ भूल गई। संभली तो समझ ही नहीं पाई कि क्या कहे और कैसे कहे। कुछ देर डर और लज्जा से चुपचाप खड़ी नेमिनाथ के दर्शन करती रही। थोड़ी देर में उसे ध्यान आया कि वह दर्शन करने नहीं, समझाकर और मनाकर उन्हें घर ले जाने के लिए आई है। उसने साहस बटोरकर कुछ कहना चाहा, पर एक शब्द भी उसके मुंह से न निकला। वह नेमिनाथ के चरणों में गिर पड़ी और रोने लगी।

नेमिनाथ न हिले, न डुले और न उन्होंने राजमती से कुछ कहा। राजमती ने सिर उठाया और आंसुओं को पोंछकर बोली, "स्वामी, आप यहां गिरनार पर्वत पर चले आये। द्वारका में आपके माता-पिता और भाई-बहन बेहाल हो रहे हैं। जूनागढ़ में मेरे माता-पिता की बुरी

हालत हैं। वे न खाना खाते हैं, न पानी पीते हैं। रोते-रोते उनकी आंखें सूज गई हैं। आप चलिये और उनका दुःख दूर कीजिये।"

यह कहकर राजमती चुप हो गई और उत्तर के
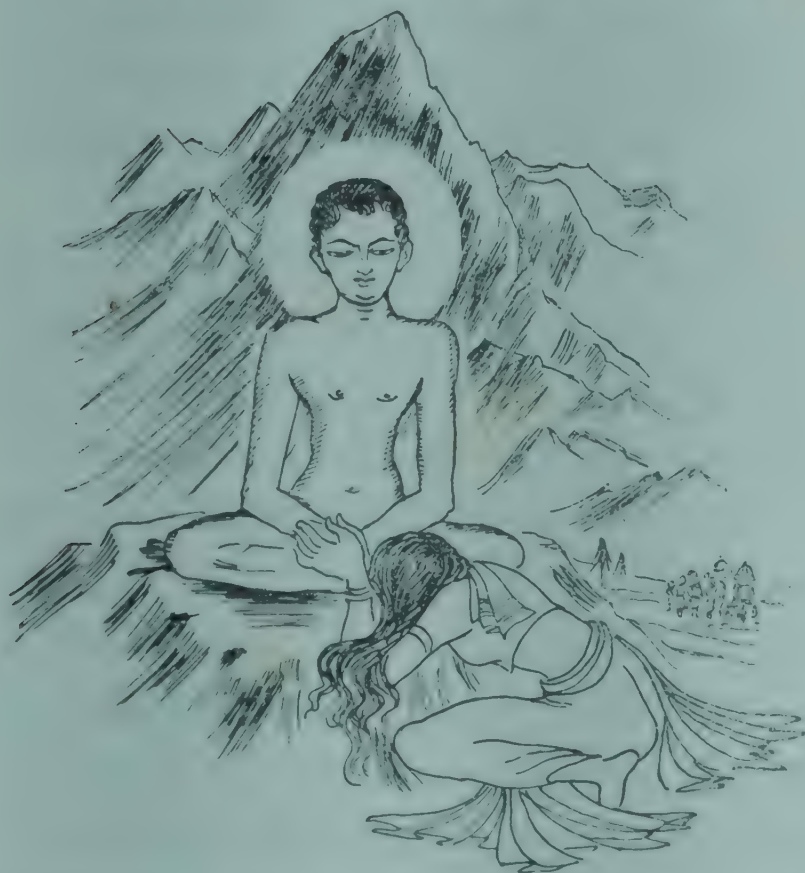
राजमती नेमिनाथ के चरणों में गिर पड़ी और रोने लगी।

लिए नेमिनाथ के मुंह की ओर देखने लगी। पर नेमिनाथ कुछ न बोले। तब राजमती ने उन्हें द्वारका की सुंदरता

और उनके संगी-साथियों तथा राजमहलों के सुखों की याद दिलाई, लौट आने के लिए सबका आग्रह बताया, लेकिन नेमिनाथ पर इसका भी कुछ असर न हुआ।

राजमती फिर कहने लगी, "हे नाथ, आपकी यह उम्र तप करने की नहीं है। आपने अभी दुनिया का कुछ नहीं देखा है। तप और तपस्या का भी समय होता है।"

पर नेमिनाथ पर इस सबका क्या असर होना था! वह चुप रहे।

अंत में उनकी दया-भावना को जगाते हुए वह बोली, "हे दयानाथ, आप प्राणिमात्र का सुख चाहते हैं। उनके दुःख के पीछे आप बड़े-से-बड़ा त्याग करने को तैयार रहते हैं। आप ही बताइये, इस संसार में आप-को छोड़कर मेरा कौन है? हे दीनबंधु, क्या मेरे दुःख को आप दूर नहीं करेंगे?"

नेमिनाथ अबतक चुप थे; लेकिन उन्होंने देखा कि राजमती मोह में डूबी है तो वह उसे ठीक रास्ता बताते हुए बोले, "राजकुमारी, तुम इतनी गुणवान और चतुर होकर भी ऐसी बातें करती हो! इस संसार में इस आत्मा का लगाव किसीसे भी नहीं है। न उसका कोई बाप है, न मां; न भाई, न बहन। यह शरीर भी आत्मा का अपना नहीं है। बस, धर्म ही उसके काम आता है। तुम

भी धर्म की शरण लो और अपना कल्याण करो। मुझे इस रास्ते से हटाने की बेकार कोशिश न करो।"

यह सुनते ही राजमती मूर्च्छित होकर वहीं गिर पड़ी।

इतने में उसकी दो सखियां, जो आड़ में खड़ीं सब बातें सुन रही थीं, सामने आ गईं। एक ने राजमती को सहारा देकर उठाया। दूसरी नेमिनाथ से बोली, "हे यादवेश, देखिए, आपके वियोग में राजकुमारी का शरीर कैसा हो गया है! दिन-रात सोते-जागते यह आपका ही नाम रटती रहती है। इसपर दया कीजिये।

फिर कुछ रुककर कहने लगी, "संत-महात्मा हमेशा सबका मनोरथ पूरा करते हैं। आप भी हमारी राजकुमारी की मनोकामना पूरी कीजिये। अपने माता-पिता, संगी-साथी और राजा उग्रसेन की अभिलाषा पूरी कीजिये।"

पर नेमिनाथ अपने निश्चय पर अटल रहे। उन्होंने उस सखी के द्वारा फिर राजमती को धर्म-पालन का उपदेश दिया।

राजमती और उसकी सखियों ने बहुतेरी कोशिश की; लेकिन वे नेमिनाथ को लौटाने में सफल न हो सकीं।

1662

तब राजमती ने दीक्षा ले ली और वह घरबार सबकुछ छोड़कर त्याग-तप का जीवन बिताने लगी। नेमिनाथ ने अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच व्रतों का पूरी तरह से पालन किया। कठोर तपस्या के द्वारा उन्होंने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। जगह-जगह पैदल घूमकर जनता को अहिंसा और जीव-दया का उपदेश दिया। अंत में गिरनार पर्वत से उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया। वह जैनों के बाईसवें तीर्थंकर हुए हैं।

आज गिरनार भारत का एक बड़ा तीर्थ माना जाता है। दूर-दूर से हजारों यात्री यहां नेमिनाथ के दर्शन के लिए आते रहते हैं।

समाज विकास - माला की पुस्तकें

मूल्य
३३ नये पैसे